

सम्पूर्णानन्द की दृष्टि में दर्शन

डॉ० नीता,

एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
नारी शिक्षा निकेतन
महाविद्यालय, लखनऊ

श्री सम्पूर्णानन्द जी एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनके चिन्तन का प्रभाव न केवल राष्ट्रीय आन्दोलन पर बल्कि राष्ट्रीय विकास के अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ा। वह दार्शनिक व्यक्तित्व के स्वामी थे और दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने धर्म, मानव जीवन का उद्देश्य, योग, आत्मा, ईश्वर एवं शिक्षा, आदि की सत्ता का विवेचन कर दार्शनिक विचारधारा को नई दिशा प्रदान की।¹ उनकी दृष्टि में दर्शन विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है।

धर्म

सम्पूर्णानन्द जी के अनुसार अपने कर्तव्य को पहचान कर उसका पालन करना धर्म है, अपने कर्तव्य से विरत रहना ही अधर्म है। सत्कर्म-सदाचार धर्म का यही लक्षण है कि उसमें क्षणभर के लिये देह और वासना के वह पर्दे जो एक जीव को दूसरे जीव से पृथक किये हुये हैं, उठ जाते हैं। नानात्व का प्रायः लोप हो जाता है। अभेद का साक्षात्कार होता है, वह क्षणिक समाधि है जो ऐसा कर्म करता है, वह सत्पुरुष, सदाचारी धर्मात्मा है, जिस प्रकार किसी योगी को समाधि में संतुष्टि मिलती है, उसी प्रकार धर्मात्मा को अपने कर्म में रहकर आनन्द मिलता है। धर्म सह-अनुभूति के द्वारा जीव को अपने स्वरूप की एक झलक दिखाई देती है। यदि किसी की बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती हो तो वह मनुष्य धर्म की सार्वभौमिकता स्वीकार नहीं कर

सकता। धर्म उसको पागलपन प्रतीत होगा, क्योंकि भेद-दर्शन ही जीवन की कुँजी है।

शुद्ध भाव से किया गया लोक संग्रह व्यावहारिक धर्म है। जो धर्म का आचरण करना चाहता है, उसको अपने स्वार्थ एवं लाभ से ऊपर उठकर सोचना चाहिये। कर्म का पात्र जितना ही विशाल होगा, उतनी ही बुद्धि में निष्कामता लायी जा सकेगी। निष्काम कर्म भोग के लिये नहीं किया जाता, इसलिये वह सुख-दुःख से परे होता है। चित्त को निष्काम बुद्धि को परिष्कृत बनाना भी यत्रसाध्य है। पूर्ण निष्कामता तो उसकी ही हो सकती है, जो पूर्ण योगी होगा। समाज का भी हमारे ऊपर कुछ ऋण है, उस ऋण को चुकाने का दूसरा नाम कर्तव्य का पालन करना, धर्म का आचरण करना है। इसी प्रकार देवऋण एवं पूर्ववर्तियों का भी ऋण चुकाना धर्म ही है और जो ऋण को चुकाने का यत्न नहीं करता वह अधर्मी है। अर्थात् जो काम कर्तव्य-बुद्धि से किया जाय, वही सदाचार, वही धर्म होगा।

धर्म का सिद्धान्त बराबर अटल होता है, चाहे कोई कितना ही भेद क्यों न कर डाले, समाज किसी को ब्रह्मज्ञानी नहीं बना सकता, परन्तु मनुष्य को मनुष्य की भाँति रहने का अवसर दे सकता है, उसका यही धर्म है। अन्त में सम्पूर्णानन्द जी कहते हैं कि मोक्ष के मार्ग पर ले जाने वाला एक धर्म ही है। अर्थ और काम मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। यह शास्त्र की उपेक्षा नहीं करती, विचारशील मनुष्य की इन्हीं प्रवृत्तियों

से धर्म की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है और धर्म उसको मोक्ष की ओर ले चलता है।²

मानव जीवन का उद्देश्य

पाश्चत्य दर्शन से लेकर भारतीय दर्शन तक का अन्तिम लक्ष्य "मोक्ष" रहा है। यही मानव का अपना अन्तिम उद्देश्य रहा है। चाहे वह कोई भी महर्षि रहे हों, सब लोग एक ही अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग दिखलाने की कोशिश करते हैं। सम्पूर्णानंद जी कहते हैं कि "यदि किसी जीव का कोई वास्तविक लक्ष्य है तो वह है अपने स्वरूप को पहचानना।"

भारतीय जीवन में समाहित भारतीय संस्कृति का सदा से यह आदेश रहा है कि सत्य, अहिंसा, त्याग, तपस्या के रास्ते को अपनाओं। यही रास्ता मानव के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाने में मार्ग दर्शन करेगा जिसको श्री कृष्ण, बुद्ध और गाँधी ने भी माना।

सम्पूर्णानंद जी के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि मानव जीवन का पहला लक्ष्य मोक्ष है और दूसरा मानव जीवन के हर क्षेत्र में विकास। चाहे वह सभ्यता और संस्कृति ही क्यों न हो। उनका लक्ष्य मानव के सभी उद्देश्यों को पूरा करने का निर्देश देता है। उनका चरम लक्ष्य तथा सम्भव होगा जब अध्यात्मवाद की ओर जीवन का लक्ष्य होगा तथा उन्होंने कहा भी है कि "मानव जीवन का लक्ष्य संतोषजनक स्वरूप तभी स्थिर होता है जब अध्यात्म मूलक समाजवाद मनुष्य समाज के कल्याण का उत्कृष्ट साधन हो।"

सम्पूर्णानंद जी का मानव जीवन का उद्देश्य अध्यात्मिक विकास था जो हर मानव जीवन में होना चाहिये। मानव जीवन को उन्नत और विकसित बनाने के लिये सम्पूर्ण समाज को विकसित करना होगा और समाज तभी विकसित होगा जब व्यक्ति को सामाजिक अध्यात्मिक विकास का रास्ता दिखाये। इस प्रकार सभी की

उन्नति में धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक तथा शैक्षिक उन्नति होना चाहिये।³

योग

सम्पूर्णानंद जी योग का अर्थ चित्त को एकाग्र करना एवं शरीर को भौतिक वस्तुओं से दूर ले जाना मानते हैं, यही मनुष्य को योग के मार्ग में बाधा डालने का कार्य करते हैं। जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार मनुष्य के चित्त में प्रज्ञान उठते रहते हैं, एक आता है और दूसरा जाता है। योग का उद्देश्य उन कठिनाइयों को दूर करना है जो अर्थ और काम में लिप्त हो। इस योग की क्रिया के द्वारा ही मनुष्य में सार्वभयता को छोड़कर एकाग्रता आती है।

योग, मानव को अगर सच कहा जाये तो, कई अवस्थाओं की ओर ध्यान दिलाता है जिसमें एक वैराग्य की क्रिया भी है। जिस मानव में वैराग्य की भावना न हो वह कभी सही योगी नहीं बन सकता। योगी होना कोई सन्यासी की तरह वन में रहना जरूरी नहीं बल्कि अर्थ और काम के पीछे दौड़ना, सत्य की खोज न करना, एक योगी मनुष्य का कर्तव्य नहीं। जो खान का खोजी है वह सांसारिक वस्तुओं से विरक्त रहता है, तथा जीवन में आने वाली सुखोपयोगी वस्तुओं से उसका कोई सरोकार नहीं हो सकता। मानव पिछली बातों पर ध्यान नहीं देता। सम्पूर्णानंद जी कहते हैं कि प्राचीन संस्कार बार-बार अपनी ओर खींचते हैं मानव के चित्त को उखाड़ने की कोशिश करते हैं जिससे मानव को घबराना नहीं चाहिये, बल्कि उससे लड़ना चाहिये, आगे बढ़ने की कोशिश करना चाहिये।

सम्पूर्णानंद जी कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को व्रती होना चाहिए। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और त्याग योगी के महाव्रत हैं। योगी को योग की क्रिया में जिसकी आवश्यकता होती है, उसमें

मानव शरीर में बसा प्राण को एकाग्र चित्त करना भी है। वही योगी होता है जो चित्त को समाधि तक लक्ष्य कर पहुँच पाता है। योगी को समाधि तक पहुँचने के लिए कई अवस्थाओं को पार करना पड़ता है जिसमें चित्त, धारणा, ध्यान और उसके बाद समाधि की अवस्था आती है। उसके मन, वाणी और शरीर से धर्म की स्वाभाविक धारा निकलती है जो लोक के लिये कल्याणकारी है।⁴

आत्मा

सम्पूर्णानंद जी का आत्मा अद्वैतवादी ही हैं जो शंकर के अद्वैत-वेदान्त से मिलता-जुलता है। ये भी चेतना विशिष्ट को ही मानते हैं तथा चेतना की सत्ता को निर्विवाद मानते हैं। इस चेतना को ही लोग आत्मा कहते हैं। मनुष्य की यह धारणा होती है कि वह चेतनायुक्त है जो शरीर से भिन्न है। इसके पृथक हो जाने पर शरीर मृत हो जाता है। चेतन देह का धर्म है।⁵ किसी क्षण-विशेष में चित्त का जो रूप होता है, उसे प्रज्ञान कहते हैं। यह आत्मा का दूसरा स्वरूप है। चित्त में बराबर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता रहता है। चेतन के बिना शरीर रह सकता है, परन्तु चेतना विरहित चित्त नहीं रह सकता। चित्त को सदैव चेतना का आश्रय चाहिये। जिसको हम चेतन कहते आये है वह आत्मायुक्त चित्त अथवा चित्तयुक्त आत्मा है। आत्मा तभी तक ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता है, जब तक इसका चित्त के साथ योग है। चित्त युक्त, आत्मा, चेतन आत्मा को जीव या जीवात्मा कहते हैं। चित्त से वियोग हो जाने से जीवन नहीं रह जाता। यही तुरीयावस्था असम्प्रज्ञात, समाधि, निर्विकल्प समाधि है। यही आत्म-ज्ञान, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है। इसलिए आत्म साक्षात्कार एक अपूर्व अनुभूति है जिसकी तुलना उन अनुभूतियों से नहीं की जा सकती जो जाग्रतादि अवस्थात्रय में होती है। अतः आत्मा न समझा जा सकता है, न समझाया जा सकता है, वह स्वसवेद्य है, उसका साक्षात्कार मात्र किया जा

सकता है। आत्म साक्षात्कार को ही आत्मज्ञान कहते हैं। यह साक्षात्कार बुद्धि और वाणी से परे है।⁶ आत्मा सब चेतनों की चेतना, सब चित्तों का साक्षी, सब जीवों का अन्तस्तम् है। सब जीव उसी के सक्रिय रूप हैं।

सम्पूर्णानंद जी की आत्मा का सार यह है कि :-

1. ब्रह्म या आत्मा एक हैं। उसका स्वरूप सत् और चित्त है।
2. चित्त के साथ मिलकर वह एक से अनेक हो जाता है।
3. चित्त असंख्य संस्कारों का भण्डार है।
4. चित्त में जो सवित् उत्पन्न होते रहते हैं, उनके कारण हमको वाह्य जगत की प्रतीति होती है।⁷

ईश्वर

यह एक प्राचीन परम्परा है कि जगत का कोई निर्माणकर्ता है, इस जगत का कर्ता कोई तो होगा ही। बहुत सी बाधाओं से जूझते हुए मनुष्य तथा अन्य सभी प्राणी जी रहे हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नदी, पहाड़, समुद्र सभी बने हुए हैं। इस जगत का पालन हो रहा है। तब जगत का अस्तित्व मान रहे हैं तो कर्ता को भी मानना होगा और अन्त में यह कह सकते हैं कि वहीं एक दिन जगत का संहार भी करेगा। इसी कर्ता, पालक और संहारकर्ता को 'ईश्वर' कहते हैं।

ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं दीखता, इसलिए उसकी कोई महत्ता कैसे स्वीकार करें। लेकिन ईश्वर कोई प्रत्यक्ष की वस्तु नहीं ज्ञान, अनुमान और शब्द प्रमाण से जाना जा सकता है। जो लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते उनमें-कपिल, जैमिनी, बुद्ध और महावीर जैसे प्रतिष्ठित आचार्य हैं। सम्पूर्णानंद जी का कहना है कि जगत ईश्वर की लीला है।⁸ मनुष्य अल्पज्ञ

और अल्पशक्तिमान हैं, उसकी इच्छाओं का धीरे-धीरे अभिघात होता है, इसलिए वह एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करता है, जो सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ हैं। यह कल्पित व्यक्ति आदर्श का काम करता है। ईश्वरवादी मानते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापक हैं, नित्य हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वसद्गुण सम्पन्न हैं, निराश्रयों का आश्रय हैं और सत्कर्म करने वालों का सहायक हैं। उस पर विश्वास करने वालों का मन आध्यात्मिक होता है तथा उनकी लोक संग्रह की शक्ति बढ़ती है।

श्री सम्पूर्णनन्द जी इन बातों को अस्वीकार नहीं करते लेकिन कहते हैं कि इन सब बातों से ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं होती। वह कहते हैं कि ऋग्वेद का यह मत बड़े सुन्दर शब्दों में उस समस्या को व्यक्त करता है जो दर्शन के अध्येता और प्रवक्ता के सामने आती है:-

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि व दधे यदि वा न।

यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।

यह जगत् कैसे हुआ, हुआ भी या नहीं हुआ, यह कौन जानता है, जहाँ तक बुद्धि की पहुँच है वही तक ज्ञाता, ज्ञेय का भेद रहता है। शुद्ध ब्रह्मचित्त के परे हैं, सब भेदों के ऊपर हैं। वह चेतना है, चेतन नहीं है, अतः वह इस रहस्य का ज्ञाता नहीं है। परमात्मा में बीज रूप से सभी ज्ञान हैं, परन्तु जगत् का आदि बिन्दु है, स्वयं मायाकृत है। इसलिए वह भी उस अवस्था का ज्ञाता नहीं हो सकता जो उसका पूर्ण रूप है। जैसे कोई अपने जन्म का साक्षी नहीं हो सकता। यह पहली बुद्धि और वाणी का विषय नहीं है, इसलिए इसके पहले मंत्र में कहा गया है- “को आप्त वेद का इह प्रवोचत्” – इसको कौन जानता है और कौन यहाँ कह सकता है।

अतः अन्त में कह सकते हैं कि –

ब्रह्म ही सत्य है, वह एक, अद्वय अपरिणामी चिद्धन है।

आत्मा और जगत् ब्रह्म से अभिन्न हैं, सुतरां एक-दूसरे से अभिन्न हैं।

ब्रह्म ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय हैं।

जगत् का प्रतीयमान रूप माया जनित है, इसलिए असत्य है,

जगत् का वास्तविक रूप ब्रह्म है,

इसलिए सत्य है।

सत्य ही ईश्वर है।⁹

शिक्षा

आज मानव को व्यापक शिक्षा की आवश्यकता पड़ रही है, जो उसे प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ाने का कार्य कर सकती है। खासकर हमारे भारतवर्ष में जो प्रजातांत्रिक व्यवस्था के लिये आवश्यक है, समाज का सम्यक संचालन करने के लिये प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य हो जाता है कि वह उचित शिक्षा ग्रहण करें। जब तक समाज शिक्षित नहीं होगा, तब तक हम किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकते, चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या आर्थिक एवं धार्मिक। आज के समाज को एक कुशल शिक्षा की आवश्यकता है, तभी सामाजिक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा का अगर व्यापक अर्थ लिया जाय तो साधारणतः उसको बौद्धिक व्यायाम का समानार्थक मान लिया जाता है। आज के छात्रों को साहित्य, विज्ञान, इतिहास, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र जितने भी पाठ्य विषय हैं, सबको पढ़ना आवश्यक है। इससे बालकों के चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। विनय, शिष्टाचार, दायित्वबोध और अपनी बुद्धि से काम करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

हमारे समाज में आज अनुशासन, संयम की कमी है, जिसने समाज को उदण्ड बना दिया

हैं। आज हमारे समाज को जरूरत हैं। उन्नत शिक्षा की जिससे की कुरीतियों दैन्य शोषण, कृत्रिम विषमता को दूर किया जा सकें, और यह तभी पूरा होगा जब सरकार और स्थानीय संस्थाओं के साथ-साथ सम्पन्न वर्ग इस ओर ध्यान दें। साथ-साथ शारीरिक उन्नति, राष्ट्रीय उन्नति का महत्वपूर्ण अंग हैं।¹⁰

शिक्षा का अर्थ विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, इंजीनियरिंग आदि नहीं बल्कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य का सर्वतोन्मुखी विकास होना चाहिये। शिक्षा के सम्बन्ध में कहा गया है कि "सा विद्याया विमुक्तये" विद्या वहीं है जो मनुष्य को परम पुरुषार्थ प्राप्त करने में सहायक हो। जिस विद्या का सम्बन्ध केवल अर्थ और काम से हो वह वास्तविक शिक्षा नहीं हो सकती। शिक्षा का आधार मानवीय मूल्यों को ऊपर उठाना है। मानव संस्कृति एवं सभ्यता का विकास ही शिक्षा का आदर्श होना चाहिये। शिक्षा का अर्थ जीवन-संघर्ष है।¹¹

आज शिक्षा का क्षेत्र भौतिकता की ओर नहीं बल्कि आध्यात्मिक की ओर होना चाहिये। यह तभी संभव है जब मनुष्य के चरित्र को ऊँचा उठाया जाय तथा उसके तन, मन और वचन को परिष्कृत किया जाए। राष्ट्र के विकास एवं कर्तव्य को पहचानने एवं कर्तव्य पालन शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। सम्पूर्णानंद जी संस्कृत की ओर विशेष ध्यान दिये हैं। उनका कहना है कि "मेरी राय में शोध करने वालों की देख-रेख में संस्कृत ज्ञान की अनिवार्यता स्वीकार करनी चाहिए।"¹²

शिक्षा का क्षेत्र जनता के जीवन से जुड़ा होना चाहिए तथा शिक्षण संस्थाओं को देश का बौद्धिक नेतृत्व संभालना चाहिये। शिक्षा का अर्थ देश के युवकों का पथ-प्रदर्शन है। आज शिक्षा का उद्देश्य सभी विषयों को एक सूत्र में बाँधने का है, चाहे वह कला का विषय हो या विज्ञान का विषय हो। आज विश्वविद्यालयों को जनता के

विचार-जगत का नेतृत्व करने, मानव भी समस्याओं को सुलझाने की आवश्यकता है, जो शिक्षण संस्थान ही कर सकते हैं। शिक्षा का केवल अर्थ, परीक्षा पास करने से नहीं बल्कि बालकों को या शिक्षार्थी को विनय, अनुशासन, संयम एवं दायित्वबोध की शिक्षा देना है। कहने का अर्थ है कि शिक्षा बहु-आयामी होनी चाहिये, जिससे मानव का हर स्तर से विकास हो और उससे मानव समाज का स्तर स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के साथ मिलकर कुछ नई दिशा दे सकें।

आज ऐसे युवकों की आवश्यकता है, जो देश और समाज के हृदय के उत्पीड़न को दूर कर सकें। आज शिक्षा की आवश्यकता युवकों को ही नहीं, उन प्रौढ़ नागरिकों के लिये भी है और इसके लिये जिम्मेदार शासन के साथ-साथ शिक्षित समाज एवं सम्पन्न वर्ग भी है। जब तक हम शिक्षा का दार्शनिक आधार प्रदान नहीं करेंगे, तब तक शिक्षा का ध्येय पूरा नहीं होगा। विशेष तकनीकी और बारीकियों की ओर ध्यान देने से ही हम अँधेरे रास्ते से निकल सकते हैं। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब मानव संस्कृति और सभ्यता को, जिसे मानव ने भारी श्रम से बनाया है, बनाना है, तो शिक्षा प्रणाली को नवीनीकरण करना होगा। यह शिक्षा पर ही निर्भर होगा।¹³

शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्णानंद जी के अनुसार व्यक्ति अपने चरम विकास में सहायता देना है। उसे पूर्ण विकास का अवसर देना है। शिक्षा के परिणाम स्वरूप निखर कर व्यक्ति जिस मनुष्य को रूप में सामने आयेगा वह न तो सामाजिक पशु के रूप में होगा और न शुल्क बौद्धिक रूप में ही अर्थशास्त्री के रूप में तो निश्चय ही नहीं होगा। पूर्ण मनुष्य वास्तव में पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिरूप होगा। प्रकृति और उसके द्वारा समस्त प्राणियों के साथ अपनी एकात्मता अनुभव करने के कारण वह असीम सहानुभूति से परिपूर्ण व्यक्ति होगा, जिसके पास दूसरों की

सहायता करने के लिये वह इच्छाशक्ति होगी जो केवल ज्ञान, सत्य और स्वार्थहीनता से ही प्राप्त होती है।¹⁴

इस प्रकार सम्पूर्णानंद जी के अनुसार— “शिक्षा का उद्देश्य जीवन के उद्देश्य से भिन्न नहीं हो सकता क्योंकि शिक्षा का वास्तविक कार्य तो मनुष्य को उसकी आन्तरिक सामर्थ्य के अनुसार इस योग्य बना देता है कि वह मानवीय जीवन के उद्देश्य को समझ सके और मनुष्यता के चरम आदर्श को प्राप्त कर सकें।”¹⁵

इस प्रकार सम्पूर्णानंद जी ने दर्शन के क्षेत्र में गम्भीर अध्ययन कर अपने विचारों को अपने लेखों एवं पुस्तकों तथा भाषणों द्वारा जनता के समक्ष प्रस्तुत किया और वास्तविकता से परिचय कराया। दार्शनिक विचार धारा के अन्तर्गत श्री सम्पूर्णानंद जी ने धर्म, मानव जीवन का उद्देश्य, योग, आत्मा, ईश्वर तथा शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये और सत्य को ही ईश्वर माना। उनके दार्शनिक विचारों ने मानव को जीवन के वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने में सहयोग प्रदान किया।

सम्पूर्णानंद जी के अनुसार—“दर्शन, जगत को समझने और उसको उन्नत बनाने का श्रेष्ठतम साधन है।”

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीक्षित, जगदीश चन्द्र, डा० सम्पूर्णानंद, प्रथम संस्करण, 1988, लखनऊ, सांविधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान, उत्तर प्रदेश शाखा, पृष्ठ-1
2. श्री सम्पूर्णानंद, चिद्विलास, पृष्ठ-217-242, प्रकाशक-ज्ञान मण्डल, लिमिटेड, वाराणसी।
3. डॉ० सम्पूर्णानंद, स्फुट निबंध, पृष्ठ-12, प्रकाशक-श्री राम मेहरा, आगरा, 1967
4. श्री सम्पूर्णानंद, चिद्विलास, पृष्ठ-51-60, प्रकाशक-ज्ञान मण्डल, लिमिटेड, वाराणसी।
5. वहीं पृष्ठ-139-140
6. वहीं पृष्ठ-158-159
7. वहीं पृष्ठ-162, 163
8. वहीं पृष्ठ-97-100
9. वहीं पृष्ठ-220-241
10. डॉ० सम्पूर्णानंद, स्फुट निबंध, पृष्ठ-12, प्रकाशक-श्रीराम मेहरा, आगरा, 1967
11. श्री सम्पूर्णानंद, स्फुट विचार पृष्ठ-180, प्रकाशक-सूचना विभाग, उ०प्र० सरकार, लखनऊ, 1959
12. डॉ० सम्पूर्णानंद, स्फुट निबंध, पृष्ठ-190, प्रकाशक-श्रीराम मेहरा, आगरा, 1967
13. वहीं पृष्ठ-12
14. डॉ० सम्पूर्णानंद, समिधा, पृष्ठ-85, प्रकाशक-सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
15. डॉ० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, डा० सम्पूर्णानंद जीवन एवं चिन्तन, पृष्ठ-58, प्रकाशक-सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1994